

## जाने कहाँ गए वो किताबों के दिन



(Photo credits- Southernliving.com)

कल बस किसी ने जब कहा कि किताबें पढ़ने का वक़्त नहीं मिलता तो घर की अलमारी में रखी किताबों की याद हो आई। लगा, अभी इन्हें इकट्ठा कर कहीं, इत्मीनान से बैठ कर किसी भी पन्ने से पढ़ने बैठ जाऊं। ऑफिस में बैठ कर इस तरह की बात करना थोड़ा विरोधाभासी है किन्तु यह भी सच है कि शायद हम सभी इन्हीं किताबों के भीतर बनते-बिगड़ते रहते हैं। विलियम स्टायरन ने एक बार कहा था कि "एक अच्छी किताब के कुछ पन्ने आपको बिना पढ़े ही छोड़ देना चाहिए ताकि जब आप दुखी हों तो उसे पढ़ कर आपको सुकून प्राप्त हो सके।" गूगल और मोबाइल के इस दौर में, जब बहुत कुछ आपको "ऑन-स्क्रीन" उपलब्ध है, लोग किताबों के पन्नों की उस गंध को भूलते जा रहे हैं। हमारा अंदाज़ -ए-बयाँ आजकल "फेसबुक- इन्स्टाग्राम- लिंकडइन" हो चला है, पर किताबें आज भी खुद को पन्ने दर पन्ने खोलकर सब कुछ बयाँ कर जाती है! मुनव्वर राणा लिखते हैं,

*"बैठे बिठाये हाल-ए-दिल-ए-ज़ार खुल गया*

*मैं आज उसके सामने खुल गया"*

एक नज़र किताबों को देख लेने की जिद। उन्हें छू लेने की तमन्ना। उन्हें किसी पुस्तक मेले की दुकान से घर लाने की कोशिश। इन सबके बीच एक अदद जेब। जेब में मनमाफिक कुछ पैसे। और जो पैसे न हो तो फिर पुस्तक मेले में जाना ही क्यों। दिल्ली में बीते वो दिन याद आते हैं, जब पुस्तक मेले के इंतज़ार में "प्लानिंग" होती थी और मौज मस्ती के पैसे बचा कर किताबें जोड़ लेने की कवायद होती रहती थी।

किताबें हमारी ज़िन्दगी में कितनी एहमियत रखती है। दोस्तों से पूछता हूँ कि आखिरी बार किताब कब पढ़ी थी... कब पन्ने पलटे थे... तो सब चुप हो जाते हैं। हम किताबों से परहेज करने लग गए हैं, किन्तु मोबाइल देखना और चार्ज करना नहीं भूलते। पहले घर में एक कोना किताबों का हुआ करता था। अपनी पसंद की किताबें। अपने पसंद के लेखक और

विधा... और कुछ नहीं तो गीता प्रेस गोरखपुर की किताबें पूजा घर में तो मिल ही जाया करती थी। पर अब तो वहां भी शायद ग्रहण लग गया है। यहाँ पढ़ने वाले लोग कम हुए और उधर बड़ी-बड़ी प्रेस भी बंद हो गयी।

जब स्कूल में था तो हिंदी की अध्यापिका सुधा जी व्यास कहा करती थीं कि किताबें दिल की बातें कह देती हैं। लिखा अमर हो जाता है। अगर इतिहास न लिखा गया होता तो हमें कैसे पता चलता कि हमारे पूर्वजों ने क्या-क्या किया ! अगर कबीर, पेरियार, मीरा, गांधी, भगत सिंह ने अपने अनुभव और सुभद्रा कुमारी, मनु भंडारी ने कहानियां नहीं लिखी होती तो हम पूरी एक दुनिया से नावाकिफ रह जाते। चंदा मामा, बालहंस, चम्पक, पंचतंत्र न होती तो क्या हमारा बचपन एक शकल अख्तियार कर पाता? जो किताबें न होती तो न मंटो होता न प्रेमचंद और न ही इस्मत चुगताई !! न भारतेंदु होते, न चेतन भगत !!

वक्रत जिस तेज़ी से बदल रहा है, इस से किताबों पर संकट मंडराने लगा है। अब पढ़ना मोबाइल तक सिमट कर रह गया है। आज जहाँ जाए, घर हो या बाहर, सभी जगह चौबीसों घंटे हाथ में फोन लिए चैट करते लाखों चेहरे मिल जायेंगे किन्तु किसी बस या ट्रेन तक में हाथ में किताब लिए बैठा शख्स अब नज़र नहीं आता। मेरे एक

पड़ोसी

चाचा कहते हैं, किताबें होती तो अच्छी हैं पर घर में उन्हें रखने की जगह नहीं है ! एक दूसरे

पड़ोसी

कहते हैं कि अब किताबें बहुत महंगी हो गयी है। ऐसे में उन्हें खरीदना मुश्किल है। मेरे पास उनकी बातों को सुनने-निहारने के अलावा कोई चारा नहीं !! तुक का तर्क दिया जाये तो समझ आता है पर बेतुकी बातों पर क्या तर्क देना ! घर में किताबें जगह भी घेरती है ? जगह क्या केवल किताबों की कम हुई ? दाम

बढ़े

तो आखिर क्यों बढ़े

? गीता प्रेस जैसी संस्था तक को बंद होना पड़ा !! क्यों का क्या कोई जवाब है ? किसी गुमनाम शायर का वो शेर याद आ गया,

*“ सिखा न सकी जो उम्र भर तमाम किताबें मुझे,*

*फिर करीब से कुछ चेहरे पढ़े और न जाने कितने सबक सीख लिए!!”*

बहरहाल, फिर से किताबों पर आते हैं। कईयों ने इश्क-विशक लिखा। किसी ने छायावाद, श्रृंगार, किसी ने सियासत और किसी ने उतने ही हक से कंटेपररी... किसी ने गरीबी पर रश्क तो कहीं गर्व... इमोशनल करती रिश्तेदारियां और मोहजिरों की चंद ज़रूरी बातें... रातों को आहें ले लेकर छुप छुप कर पढ़े गए लफ़्ज़ तो उन्ही किताबों का रेफरेंस लेकर लिखे गए प्रेम पत्र... अजीब भावुक करती है किताबों की दुनिया... जो नशतर से अचानक माँ हो जाती है और हम खड़े रोंगटे लिए अपने परिवार से लिपट जाना चाहते हैं। किताबें सब कुछ नीरी-सहजता से कहती चली जाती हैं। हम कभी उनके मिसरों पर ठहरते हैं और कभी उनमें अपना अक्स खोजते चले जाते हैं। किताबें कई बार सवाल-खोरी भी करती है। वसीम बरेलवी साहब की कलम से सुनिए,

*“मोहब्बत में तुम्हे आंसू बहाना तक नहीं आया*

*बनारस में रहे और पान खाना तक नहीं आया*

*ये कैसे रास्ते से लेकर चले आये तुम मुझको  
कहाँ का मैकदा, एक चायखाना तक नहीं आया !!”*

अगर हम कुछ किताबों को फिर से अपने घर तक ले आये और लाये ही नहीं, बल्कि उनके पन्ने बदलते बदलते खुद की ज़िन्दगी को भी बदलते जाँँ तो किताबें फिर से जिंदा हो उठेंगी... ख्याल बड़ा ज़रूर है पर न-मुमकीन बिल्कुल नहीं !! चलिए, इस इतवार कुछ पन्ने फिर से पलटते है, किताबों में अपने बचपन- यौवन को फिर से खोजते हैं... इस ख्याल भर से देखिये, किताबें मुस्कुरा उठी हैं.....

*(लेख- ओम, अर्बन95, उदयपुर)*